# भाजपा जो फ़सल काट रही है, वह 'गीता प्रेस' ने तैयार की है

**सत्यवीर सिंह**

महात्मा गांधी के विचारों का प्रसार करने के लिए, 1995 में शुरू हुआ, 2021 का 'गाँधी शांति पुरस्कार', गीता प्रेस गोरखपुर को मिलेगा। "अहिंसा के गाँधीवादी तरीक़े से, समाज में, सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक बदलाव लाने के, शानदार योगदान के लिए, इस पुरस्कार के लिए गोरखपुर की 'गीता प्रेस' को चुना गया है", ये घोषणा, 5 सदस्यीय जूरी के अध्यक्ष, प्रधानमंत्री मोदी ने, 12 जून को की। इस पुरस्कार में 1 करोड़ रुपये नक़द और प्रशस्ति पत्र दिया जाता है। जैसा कि फासिस्ट मोदी सरकार के काम करने का तरीका है; जूरी में प्रमुख विपक्षी दल की हैसियत से सदस्य, अधीर रंजन चौधरी का कहना है कि उन्हें चयन की प्रक्रिया का हिस्सा बनाने का अवसर ही नहीं मिला। 'गीता प्रेस, गोरखपुर' ने देश के 'चहुमुखी विकास' में क्या करिश्माई योगदान किया है, देश को ज़रूर जानना चाहिए।

"भगतसिंह की फांसी की ख़बर, उसके अगले दिन पता चली थी। सारे गांव में रोटी नहीं बनी थी, मानो वह हमारे ही गांव का रहने वाला हो", बचपन में दादी जी द्वारा सुनाई, शहीद-ए-आज़म भगतसिंह के बलिदान की ऐसी कहानियों ने, ज़हनियत पर बहुत गहरा और अमिट प्रभाव डाला है। बचपन में ही, शिवरात्री पर लगने वाले मेले से ख़रीदा, भगतसिंह का वह पहला पोस्टर आज भी याद है। भगतसिंह पीली पगड़ी पहने हुए, चंद्रशेखर आज़ाद आधे नंगे बदन पर, मोटी जनेऊ प्रमुखता से दिखती हुई, धोती में पिस्तौल खोंसे और साथ में तलवार लिए घोड़ों पर सवार, शिवाजी और महाराणा प्रताप और सबसे ऊपर लहराता हिंदुत्व का भगवा झंडा!! उस समय कुछ समझ नहीं आया। 'गोरखपुर की गीता प्रेस' की ये करामात, बड़ा होने पर समझ आई। 'मैं नास्तिक क्यों' लिखने वाले, फिरकापरस्त सोच पर, बिना लाग-लपेट कड़ा प्रहार करने वाले, मार्क्सवादी- लेनिनवादी, शहीद-ए-आज़म भगतसिंह, वह शख्श, जिसने फांसी का फंदा गले में डालते वक़्त भी ईश्वर/ वाहे गुरु का नाम लेने से दृढ़ता से मना कर दिया था और एचएसआरए के उनके कमांडर-इन-चीफ अमर शहीद चंद्रशेखर आज़ाद को, 'सनातनी हिंदुत्व' के भगवा झंडे के नीचे लाने और उनकी सेक्युलर, वैज्ञानिक, तर्कपूर्ण सोच को विकृत कर डालने का काम आसान नहीं था, जिसे, दुनिया भर में सनातनी हिंदुत्व का प्रचार-प्रसार करने को समर्पित 'गीता प्रेस' ने कितनी आसानी से कर डाला!! कोई बारीकी से ना सोचे तो ये शैतानी, समझ ही नहीं आएगी। मोदी सरकार, गीता प्रेस को गाँधी पुरष्कार से ना नवाज़ती, तो भला किसे नवाज़ती!!

इस देश में झूठ, पाखंड, कूपमंडूकता, गपोड़पंथ, घोर स्त्रीविरोधी, दलित विरोधी, मुस्लिम विरोधी विचार और हिंदू मज़हबी ज़हालत को फैलाकर, सफ़ेद झूठ को, सच के मुक़ाबले, कहीं अधिक बलवान बनाने में गोरखपुर की 'गीता प्रेस' का योगदान, आरएसएस से भी ज्यादा है। बांकुरा, पश्चिम बंगाल के रहने वाले, मारवाड़ी व्यापारी, जयदयाल गोयन्दका न अपने मित्र घनश्याम दास जालान की मदद से, 'गीता प्रेस' की स्थापना गोरखपुर शहर में, 1923 में की। सूत, कपड़े, बर्तन और केरोसिन के व्यापारी, इस मारवाड़ी सेठ का माल देश भर में जाता था। हर शहर में होने वाली सत्संग, पूजा-पाठ की उन्हें जानकारी थी, इसलिए सनातन धर्म फ़ैलाने वाली, इस संस्था का नेटवर्क देशभर में जमने में वक़्त नहीं लगा। किसी भी ब्रांड का हो, मज़हब का प्रचार-प्रसार करने वाली संस्थाओं को पैसे की क़िल्लत कभी नहीं होती। पगार में एक नया पैसा बढ़ाने की मांग करने वाले मज़दूरों को, पुलिस से कुटवाने वाले, मारवाड़ी सेठों के सरगना, बिड़ला को, हर शहर में, भव्य बिड़ला मंदिर बनवाने से पहले सोचना नहीं पड़ता। देखते ही देखते, गीता प्रेस के तंतु देशभर में फैल गए।

सनातन धर्म के नाम पर, मज़हबी जहालत प्रचार-प्रसार की इस फैक्ट्री के प्रोडक्शन पर नज़र डालेंगे, तो सर चकरा जाएगा। तुलसीदास की रामचरित मानस, 3.5 करोड़; भगवत गीता- 16 करोड़; रामचरित मानस की कुल 10 लाख प्रतियाँ हर साल, सनातन धर्म फ़ैलाने की मासिक पत्रिका 'कल्याण', जो 1926 से लगातार प्रकाशित हो रही है, की कुल 1.6 लाख प्रतियाँ हर माह; गीता प्रेस के प्रवक्ता कहते हैं कि आजकल तो इतनी डिमांड है कि हम पूरी ही नहीं कर पा रह। 2022 -23 में गीता की रिकॉर्ड 2.4 करोड़ प्रतियाँ बेचकर 111 करोड़ रु बनाए। कोरोना काल में, जब बाक़ी प्रेस बंद पड़ी थीं, गीता प्रेस दिन-रात दनदना रही थी। देश-विदेश में गीता प्रेस स्वामित्व की कुल 20 विशाल दुकानें, और लालाओं की 2500 निजी दुकानें है। अब तक, 15 भाषाओं में, सनातन धर्म की, 1850 पुस्तकों की कुल 93 करोड़ प्रतियां बिक चुकी हैं। इस बारूद रूपी 'धार्मिक साहित्य' को बेचने वाली, चलती-फिरती गाड़ियों और उनके कारिंदों की तो गिनती करना ही संभव नहीं।

कार्ल मार्क्स ने, धर्म को अफीम, यूँ ही, बे-वजह नहीं कहा था। मज़हबी नशे का पहला हमला, तर्कपूर्ण सोच और जो कुछ भी घट रहा है, उसका कारण जानने की इच्छा, पर होता है। गीता प्रेस नाम की सनातन फैक्ट्री, अगर 100 साल से अपनी पूरी क्षमता पर, उत्पादन ना कर रही होती और उसके उत्पाद की खपत सारे देश में ना हो रही होती, तो लोग सवाल करते कि हुकूमत जिसे 'अमृत काल' बता रही है, उसमें 80 करोड़ लोग, दो जून की रोटी का जुगाड़ करने लायक़ भी क्यों नहीं बचे? मोदी कीर्तन में शामिल होने की बजाए, ऊंची आवाज़ में, एक सुर में बोलते कि मोदी जी, ये तो अडानी-अम्बानी का 'अमृत काल' है, हमारा तो 'मृत काल' है!! आप हमें धोखा दे रहे हैं!! आप किसके हित में, 18-18 घंटे काम कर रहे हैं? सवाल पूछने वाले और भेड़ों की तरह हंकने से इनकार करने वालों से हुकूमतें बहुत डरती है। मारवाड़ी सेठ की बनाई, गीता प्रेस की ही महरबानी है कि हुकूमत, ग़रीबों की प्रचंड फौज से बिलकुल नहीं डरती। वह जानती है कि चुनाव से 2 महीने पहले, हिंदू धर्म ख़तरे में आ जाएगा और धर्म को ख़तरे से सही-सलामत बाहर निकालना, हर सनातनी हिन्दू का पहला फ़र्ज़ है, भले भूख से, पेट में आंतें सिकुड़ ही क्यों ना गई हों।

"हमें रोटी नहीं चाहिए, रोज़गार नहीं चाहिए, हम 200/ लीटर पेट्रोल ख़रीद लेंगे; लेकिन, हमें राम-मंदिर चाहिए", ऐसी दीवानगी वाले भक्त, 93 करोड़, श्रीमद भागवत गीता, रामायण, वेद, उपनिषद, मनु-स्मृति की खपत हुए बिना संभव ही नहीं थी। भारतीय फ़ासीवाद के जनक, लालकृष्ण अडवानी के 'राम-मंदिर आंदोलन से पहले, भाजपा की मात्र 2 सीटें थीं। कोई उन्हें पूछता नहीं था। पार्कों में, मिनी पेटीकोट जैसी खाकी चड्डी पहने कलाबाजी करते, मोटी तोंद वाले खाए-अघाए लोगों को देखकर, लोग हंसा करते थे। गीता प्रेस, लेकिन, समाज में

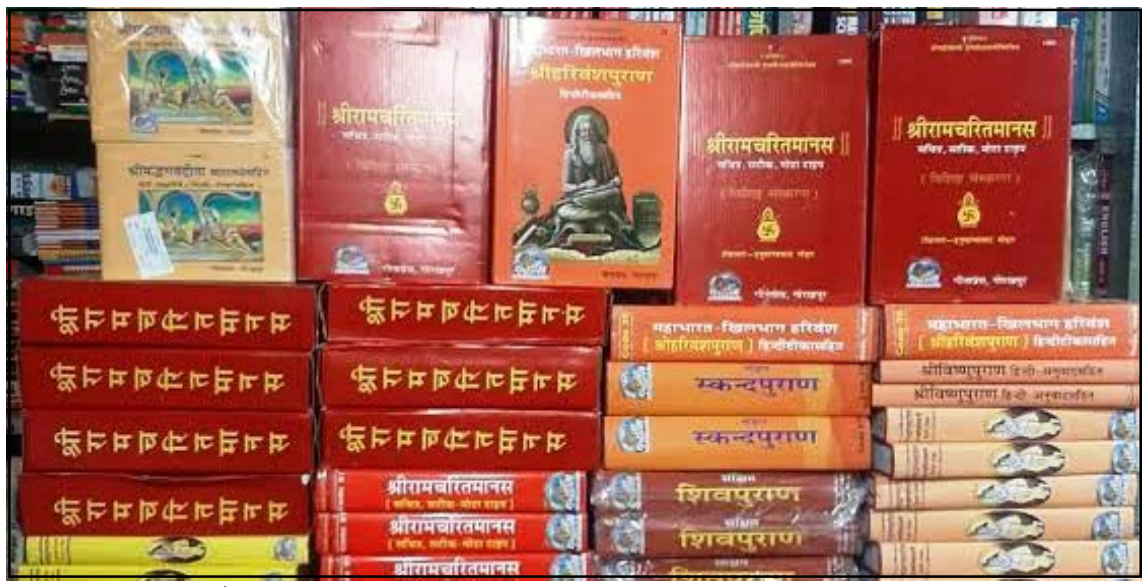


धर्मान्धता का बारूद बिछाने के काम में बदस्तूर लगी रही और नतीज़ा सामने है। आज , उसी भाजपा की सही माने में बघ रही है। उनकी उन्हीं लाठियों में से धुआ उठ रहा है। आज वे, कितने ही शातिर अपराधी को, गिरफ्तारी से बचा लेते हैं, भले, सारा देश ही क्यों न उस दुर्दांत गुंडे की गिरफ़्तारी के लिए चिल्ला रहा हो। किसी भी बेक़सूर को, आज वे, जब तक चाहें, जेल में सड़ा सकते हैं। जो भी उनकी आँखों में आँखें डालकर बात करने की जुर्रत करता है, सुबह 4 बजे उसके दरवाजे के सामने ईडी की जिप्सी खड़ी नज़र आती है!!

"कर्म किए जा, फल की इच्छा मत कर ऐ इंसान', गीता के इस ज्ञान की, प्रतिष्ठित व्यंगकार हरिशंकर परसाई ने बिलकुल सही व्याख्या की है; "हे मज़दूर, तू तो, जब तक मालिक कहे, बस काम किए जा, अपने वेतन, भत्ते, बोनस की मांग ना कर!!" भूखे बेहाल लोगों को अगर 'गीता प्रेस, गोरखपुर' के प्रयासों से ये समझा दिया जा चुका हो, कि ये सब तुम्हारे पूर्व-जन्म का परिणाम है, जो भाग्य में लिखा है वह होकर रहेगा, होनी को कोई नहीं टाल सकता, बंदे की सांसें गिनी हुई होती हैं, तो फिर हुकूमत को करने को रह ही क्या जाता है। ना अस्पताल की ज़रुरत, ना स्वच्छ पानी की, ना सीवर की!!

**मठ, अखाड़े, आश्रम, मंदिर, महिलाओं के लिए सबसे असुरक्षित स्थान हैं। राम मंदिर में चंदे का घोटाला हुआ, 6 गुना मंहगी ज़मीन ख़रीद कर प्रबंध कमेटी ने लूट की, केदारनाथ मंदिर का सैकड़ों करोड़ का सोना गायब हो गया, सारा देश आंदोलनकारी महिला खिलाड़ियों के साथ है लेकिन 'साधू संत' नाम की मुफ्तखोर जमात, खुलकर गुंडे बृज भूषण के साथ है; इस सबके बावजूद लोगों की आस्था इस मज़हबी माफ़िया में कम नहीं होती।**

आस्था के नाम पर, जन-मानस के एक विशाल हिस्से के विवेक को इस हद तक लकवा मार गया है। इसकी मूल वजह गोरखपुर की यही गीता प्रेस है।

सड़ती पूंजीवादी राज-सत्ता को, लोगों के आक्रोश से बचाने का, फ़ासीवाद का आख़री दांव खेला जा चुका है। इस खूनी, घृणित और नंगी तानाशाही के कार्यान्वयन के लिए, समाज को उन्मादी बनाने के लिए, एक कृत्रिम शत्रु चाहिए होता है, जैसे जर्मनी में यहूदी थे। बदकिस्मती से, हम बहुत तक़लीफ़ के साथ देख रहे हैं कि काफ़ी बड़े हिस्से में मुस्लिम-घृणा इतनी गहरी बैठी हुई है, कि लिंचिंग जैसी बर्बरता की इन्तेहा के भी हिमायती काफ़ी संख्या में ना सिर्फ मौजूद हैं बल्कि वे, हत्यारों के समर्थन में, मोर्चे और महापंचायतें तक करते हैं. मज़हबी पाठ, दूसरे मज़हबों के प्रति घृणा के बिना पूरे नहीं होते. सूफ़ी संतों, फ़कीरों और गौतम बुद्ध-नानक-कबीर की इस धरती पर, महज़ 16त्न ऐसे मुस्लिम समाज के लिए, जो सच्चर कमेटी के अनुसार सबसे ज्यादा गुरबत में जी रहा है, इतनी घृणा कैसे पैदा हुई. शक़ की सुई, सनातन धर्म वाली, गीता प्रेस नाम की फैक्ट्री की तरफ़ घूम जाती है.

गीता प्रेस नाम की फैक्ट्री को, वैचारिक प्रदूषण और ज़हनी ज़हर फ़ैलाने देने के लिए, इसे गाँधी पुरष्कार से नवाज़ने वाली मोदी सरकार, क्या अकेली ज़िम्मेदार है? उसने तो बस पके हुए खेत की फ़सल काटी है. नफ़रत की ये फ़सल, भले अब लहलहाई है, लेकिन ये फसल 9 साल से नहीं बल्कि पूरे 100 साल से फल-फूल रही है. मोदी-पूर्व काल के शासकों ने क्यों नहीं समझा, कि समाज में सनातन धर्म के प्रसार की नहीं, बल्कि वैज्ञानिक दृष्टिकोण, तर्क-विवेकपूर्ण सोच पैदा करने की ज़रूरत है? महात्मा गाँधी, ख़ुद, हमेशा 'वैष्णव जन' वाले भजन से ही अपनी सभाओं की शुरुआत किया करते थे. गीता प्रेस के स्थापक मारवाड़ी, गाँधी जी के दोस्त थे, भले बाद में उनमें मतभेद हुए और गाँधी की हत्या में उनकी गिरफ़्तारी हुई. गाँधी हर वक़्त सचेत रहते थे, कि उस वक़्त मौजूद, भगतसिंह वाली क्रांतिकारी विचारधारा, देश के युवाओं को अपनी ओर आकृष्ट करने में क़ामयाब हो गई तो क्या होगा? नेहरू को तो जनवाद और सेकुलरिज्म का चैंपियन बताया जाता है. उस वक़्त, इस फ़सल की निराई, गुड़ाई, सिंचाई हो रही थी. वह एक दिन लहलहाएगी, क्या नेहरू जी को अंदाज़ नहीं था?

इंदिरागांधी के ज़माने में तो धीरेन्द्र ब्रह्मचारी जैसे मुस्टंडे, सत्ता प्रतिष्ठान के शिखर पर ही विराजमान हो चुके थे. 1980 के बाद तो मज़हबी नंगई शुरू हो ही गई थी.

पूंजीवादी सत्ता देश में उस वक़्त प्रस्थापित हुई, जब एक तिहाई विश्व में उसे उखाड़कर कूड़ेदान में सकेरा जा चुका था. सही माने में जनवाद, स्त्री-पुरुष बराबरी, सही माने में सेकुलरिज्म जिसमें कोई किसी भी धर्म को माने या ना माने ये उसका निजी मामला है, राज्य किसी भी धर्म को नहीं मानेगा, इन विचारों को पूंजीवाद ने ही प्रस्थापित किया था. हमारे देश में, आज़ादी के वक़्त से ही पूंजीवादी सत्ता शुरू से ही गली-सड़ी सामंती अधिरचना को ढोती चली आई और 1970 के बाद से तो उसने पुरातनपंथी धार्मिक विचारों को पुन- स्थापित करना शुरू कर दिया था. इसी का परिणाम था कि गोरखपुर की गीता प्रेस फलती-फूलती गई, सनातन धर्म पसरता गया, अँधेरा गहराता गया और नफ़रत की फ़सल लहलहाती गई, जिसका असली विकराल स्वरूप देश को अब झेलना पड़ रहा है जब चारों ओर फासीवाद का दैत्य श्मशान नृत्य करता नज़र आ रहा है. देश में बिकने वाला सारा प्रगतिशील साहित्य, गीता प्रेस का दसवां हिस्सा भी है क्या?

जर्मनी की प्रख्यात फ़ासीवाद-विरोधी योद्धा, क्लारा जेटकिन ने हिटलर-मुसोलिनी के नंगे फ़ासीवाद की विवेचना करते हुए कहा था; 卐फ़ासीवाद, सर्वहारा वर्ग को इस बात की सजा है कि उसने रुसी बोल्शेविक क्रांति को आगे नहीं बढ़ाया卐. उसी बात को आगे बढ़ाया जाए तो, हमारे देश में फ़ासीवाद, पूरी तरक्कीपसंद क्रांतिकारी ज़मात को इस बात की सज़ा है कि वे सब मिलकर भी गीता प्रेस जैसी कोई संस्था क़ायम नहीं कर पाए. हिन्दुत्ववादियों ने 93 करोड़ धार्मिक ग्रन्थ समाज में खपा दिए, और क्रांतिकारी कहकर शेखी बघारने वाले, बुद्धिजीवी कह, ख़ुद की कमर ठोकने वाले, शहीद-ए-आज़म भगतसिंह की पुस्तिका, 'मैं नास्तिक क्यों?' की, 1 लाख प्रतियाँ भी, समाज के हाथों में नहीं दे पाए. क़सूरवार कौन है? सनातन धर्म फ़ैलाने वाली, हिन्दुत्ववादी मासिक पत्रिका 'कल्याण' की कुल 1.6 लाख प्रतियाँ बिक रही हैं, मज़दूर वर्ग की सारी पत्रिकाओं का इससे आधा सर्कुलेशन भी नहीं है. ग़लती किसकी है?

हमारे विचार, शोषित-पीड़ित समाज को गोलबंद कर, समाज की मुक्ति का मार्ग खोल सकते हैं, लेकिन उन्हें हम अपने भेजे में छुपाए रखते हैं, ताला-बंद रखते हैं. गीता प्रेस के ग्राहकों के विचार, इकट्ठे होकर लड़ने पर उतारू, बेरोज़गारी-मंहगाई से कराहती विशाल सेना को, टुकड़े-टुकड़े कर, एक दूसरे के खून के प्यासे बनाने वाले हैं, लेकिन वे, अपने मखौल की परवाह किए बगैर, उन्हें हर तरफ़ फ़ैलाने में, जी-जान लगा देते हैं. दोषी कौन है? हमारे पास सच है और उनके पास झूट. 'इस देश में जनवाद की जड़ें बहुत गहरी हैं, गंगा-जमुनी तहज़ीब, ज़र्रे ज़र्रे में रची-बसी है, ये अफगानिस्तान नहीं बन सकता', कहकर हम अपनी जड़ता और निकम्मेपन को छिपाते रहे. झूठ बलशाली होता गया और सच निरीह-कमज़ोर. हमें तब पता चला, जब गंगा-जमुनी तहज़ीब में पलीता लग गया.

**मोदी ज़मात ने गीता प्रेस, गोरखपुर को गाँधी शांति पुरस्कार देकर सारी प्रगतिशील ज़मात को एक चुनौती प्रस्तुत की है. हम चाहें तो उसे स्वीकार कर अपने काम में लग सकते हैं, और चाहें तो सोते-ऊँघते, अपने विनाश का इंतज़ार कर सकते हैं.**